R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य-7 रुपये, वर्ष-24, अङ्क-7 जुलाई 2024

मङ्गलायतन

दिव्यध्वनि वीरा खिराई आज शुभ दिन।
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्॥

तीर्थधाम चिदायतन, हस्तिनापुर में

श्री 1008 शान्तिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव

(रविवार, 1 दिसम्बर से शुक्रवार, 6 दिसम्बर 2024)

मङ्गल आमन्त्रण

आदरणीय सत्‌धर्म प्रेमी साधर्मीजन,

सादर जयजिनेन्द्र !

समस्त जिनधर्मभक्तों को जानकर हर्ष होगा कि परमोपकारी वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की अनुकम्पा से, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के पुण्य प्रभावनायोग में, अखिल विश्व की आश्चर्यकारी, परमपवित्र तपोभूमि-हस्तिनापुर की पुण्यधरा पर, **तीर्थधाम चिदायतन** का अवतरण हो रहा है।

हस्तिनापुर वह गौरवशाली ऐतिहासिक एवं पौराणिकनगरी है, जहाँ पर तीन-तीन तीर्थंकरों (भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ एवं अरनाथ) के चार-चार कल्याणक हुए हैं। साथ ही यह पौराणिक स्थल भगवान मल्लिनाथ के समवसरण, भगवान आदिनाथ के प्रथम आहारदान तथा विष्णुकुमार के द्वारा अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनिराज पर हुए उपसर्ग निवारण का साक्षी रहा है। यह नगरी, जैन महाभारत के महानायक पाण्डवों एवं कौरवों की प्रसिद्ध राजधानी रही है। प्रतिवर्ष धर्मनगरी हस्तिनापुर में विश्व के अलग-अलग कोनों से लाखों की संख्या में दर्शनार्थी पधारते हैं।

इस संकुल के सम्बन्ध में देश के ख्यातिप्राप्त विद्वानों, श्रेष्ठियों एवं साधर्मियों ने अपनी हार्दिक अनुमोदना प्रदान कर हमारा उत्साहवर्धन किया है।

इस महान धार्मिक प्रकल्प **तीर्थधाम चिदायतन** में भगवान श्री शान्तिनाथ चिदेश जिनालय; श्री गन्धकुटी चौबीसी चिदेश जिनालय का भव्य **पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव रविवार, 1 दिसम्बर से शुक्रवार, 6 दिसम्बर 2024** तक होना निश्चित हुआ है। आप सब इस महामहोत्सव में सादर आमन्त्रित हैं।

आइये, तीर्थधाम चिदायतन संकुल निर्माण की अनुमोदना एवं हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र के दर्शन कर अपना जीवन धन्य करें।

——: सम्पर्कसूत्र :——

पण्डित सुधीर शास्त्री, मोबा. 97566 33800

श्री नवनीत जैन, नोएडा, मोबा. 8171012049

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ.प्र.) का
मासिक मुखपत्र

वर्ष-24, अङ्क-7 (वी.नि.सं. 2550; वि.सं. 2080) जुलाई 2024

गागर अमृत की भर लाईं,......

गागर अमृत की भर लाईं, माता श्री जिनवाणी आईं।
सुन जिनवर वचन हरषाओ रे॥
आओ अमर तत्त्व को ध्याओ, सिद्ध सरीखा निज को पाओ।
सुन जिनवर वचन हरषाओ रे।टेक॥

जल निर्मल है, मल को हटाओ जी हटाओ।
आस्रव भाव अलग ही पाओ जी पाओ जी॥
उज्ज्वल अविचल आतम पाओ, अपना है अपने में जाओ॥
सुन जिनवर वचन... ॥1॥

आओ जिनवाणी दर्पण निहारो जी निहारो।
लोकालोक को अपने में पाओ जी पाओ जी॥
भवसागर गोखुर में पाओ, आओ द्वादशांग मन लाओ
सुन जिनवर वचन... ॥2॥

आतम ज्ञान में मन को लगाओ जी लगाओ।
निज आतम में आनंद पाओ जी पाओ जी॥
रत्नत्रय रंग में रंग जाओ, ध्याओ, गाओ और अपनाओ॥
सुन जिनवर वचन... ॥ 3॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि०वि०

सह सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, मङ्गलायतन

क्या - कहाँ

प्रथमानुयोग	धर्मी जीव की भावना	5
द्रव्यानुयोग	समयसार नाटक पर प्रवचन	10
	स्वानुभूतिदर्शन :	16
प्रथमानुयोग	हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास	19
करणानुयोग	भरतक्षेत्र के खण्ड	22
प्रथमानुयोग	कवि परिचय	24
करणानुयोग	श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान	25
द्रव्यानुयोग	बालवाटिका	28
	जिस प्रकार-उसी प्रकार	29
	समाचार-दर्शन	30

शुल्क :
एक प्रति : 07.00 ₹
आजीवन (15 वर्ष) : 1000.00 ₹

प्रथमानुयोग

आगामी तीर्थधाम चिदायतन के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा पंचकल्याणक पर किए गए प्रवचनों का धारावाहिक प्रकाशन किया जा रहा है।

जन्मकल्याणक प्रवचन

धर्मी जीव की भावना

वह धर्मी जीव, अविनाशी मोक्षसुख के कारणरूप शुद्धोपयोग की भावना करता है। यहाँ शुद्धोपयोग की भावना रागरूप नहीं, किन्तु समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थ होकर आत्मस्वभाव का आश्रय करना ही शुद्धोपयोग की भावना है। धर्मी जीव, परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थ होकर स्वभाव का आश्रय किस प्रकार करता है? — यह बात प्रवचनसार की 160 वीं गाथा में कहते हैं कि —

णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण ण कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं॥

अर्थात् मैं देह नहीं, मन नहीं तथा वाणी नहीं; उनका कारण नहीं, कर्ता नहीं, कारयिता (करानेवाला) नहीं, कर्ता का अनुमोदक नहीं।

जैसे, अङ्क और अक्षर को जाने बिना नामा (हिसाब) नहीं लिखा जा सकता; उसी प्रकार आत्मा के अङ्क और अक्षर, अर्थात् आत्मा का चैतन्य चिह्न और आत्मा के अविनाशी स्वभाव को जाने बिना धर्म का नामा नहीं हो सकता। भाई! यह तो जन्म—मरण की बेड़ी तोड़ने की बात है। इसे समझे बिना जन्म—मरण का अन्त किसी भी प्रकार नहीं आ सकता। इसे समझे बिना भगवान की मणि—रत्नों की प्रतिमा बनावे और हीरों के थाल में कल्पवृक्षों के फल से पूजा करे, तो भी वह शुभराग है। आत्मा का स्वभाव राग रहित है, उसे समझे बिना संसार के जन्म—मरण का अभाव नहीं होता।

शुभराग, धर्म का पन्थ नहीं है। आत्मा की पहिचान करके उसका आश्रय करना ही एकमात्र धर्म का पन्थ है। अनन्त ज्ञानियों का यह एक ही पन्थ है। कहा भी है कि —

'एक होय तीन काल में, परमारथ का पंथ'

अर्थात् मोक्ष का मार्ग तीनों काल एक ही प्रकार का है।

धर्मी जीव का चिह्न क्या है? धर्मी जीव के अन्तर में कैसा भान होता है? — उसकी यह बात है। धर्मी जानता है कि मैं ज्ञाता आत्मा हूँ और शरीरादि समस्त परद्रव्य, ज्ञेय हैं। मेरे ज्ञानस्वरूप से शरीरादि ज्ञेय पदार्थ भिन्न हैं, अर्थात् मैं शरीर नहीं, मन नहीं, तथा वाणी भी मैं नहीं हूँ; इस कारण उन शरीर—मन—वाणी से मेरा धर्म नहीं होता है।

अब, धर्म किसमें से धर्म करना? आत्मा शरीर—मन—वाणी से पार, ज्ञान—दर्शन का पिण्ड है, उसी से धर्म की स्फुरणा होती है। आत्मा ज्ञानमूर्ति है और शरीर—मन—वाणी, परज्ञेय है; आत्मा उनका जाननेवाला है परन्तु आत्मा उनका कुछ भी नहीं कर सकता। शरीर से—मन से अथवा वाणी से आत्मा का धर्म नहीं होता। यह शरीर और भाषा तो परवस्तु है और अन्तर हृदय स्थान में एक सूक्ष्म मन है, वह जड़ पुद्गलों से रचित है, वह मन भी परवस्तु है। आत्मा का जितना उस मन की तरफ जुड़ान होता हैं, उतना विकार होता है, वह विकार भी आत्मा का स्वरूप नहीं है। मन परद्रव्य है, उस मन के अवलम्बन से भी आत्मा का धर्म नहीं होता। आत्मा का दर्शन—ज्ञानस्वभाव मनातीत और विकल्पातीत है, उसे पहिचानकर उसमें एकाग्र होने पर जितने अंश मन से पृथक् हो, उतने अंश धर्म है; इस भाव के बिना तीन काल में भी धर्म नहीं होता। आज समझो, कल समझो अथवा दो—पाँच भव बाद समझो, परन्तु यह समझे बिना कभी भी भव का किनारा आने वाला नहीं है।

पर से भिन्नपना जाने बिना पर के प्रति न तो मध्यस्थता होती है और न

स्वरूप में एकाग्रता होती है। धर्मी जीव, आत्मा को समस्त परद्रव्यों से भिन्न जानकर उनके प्रति मध्यस्थ होता है और अपने स्वभाव में स्थिर होता है। धर्मी जीव जानता है कि मैं न तो वाणी हूँ और न वाणी से मेरा धर्म होता है। आत्मा, वाणी का कर्ता नहीं है और वाणी से आत्मा समझ में भी नहीं आता है।

मैं शरीर—मन—वाणी नहीं हूँ—इसका अर्थ यह हुआ कि शरीर—मन—वाणी की क्रिया आत्मा के द्वारा नहीं होती। व्यवहार से भी आत्मा उनका कुछ करे — ऐसा नहीं है। भाषा में ऐसा आता है कि 'आत्मा ने शरीरादिक का किया' परन्तु वस्तुस्वरूप इससे भिन्न है। आत्मा से दूर स्थित देव—शास्त्र—गुरु और समीपवर्ती शरीर—मन—वाणी — ये सब मुझसे पृथक् हैं। मैं जाननेवाला हूँ और ये सब मेरे ज्ञेय हैं। इस प्रकार ज्ञान और ज्ञेय को भिन्न—भिन्न पहिचानकर अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करना ही धर्म है।

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि आत्मा, शरीर—मन—वाणी का कारण नहीं है; शरीर—मन—वाणी तो जड़ पुद्गल की रचना है। धर्मी जीव अपने को उनका कारण नहीं मानता तथा जिस भाव से शरीर—मन—वाणी का संयोग होता है, उस भाव का कारण भी धर्मी जीव अपने को नहीं मानता। स्वभावदृष्टि से आत्मा, विकार का कारण है ही नहीं और निमित्तरूप से भी आत्मा, शरीर—मन—वाणी का कारण नहीं है।

अज्ञानी कहता है कि बाहर का व्यवहार तो करना पड़ता है न? परन्तु भाई! आत्मा पर में क्या करे? क्या तुझे जड़ की क्रिया में आत्मा का व्यवहार मनवाना है? निश्चय आत्मा में और व्यवहार बाहर में — ऐसा नहीं है। आत्मा का व्यवहार, आत्मा से बाहर नहीं होता, अर्थात् बाहर की — शरीर—मन—वाणी की क्रिया तो आत्मा व्यवहार से भी नहीं करता। ज्यादा से ज्यादा आत्मा, पर्याय में उस तरफ का राग करता है, उसे जानना

व्यवहार है। त्रिकाली स्वभाव में राग नहीं है और पर्याय में यह क्षणिक राग होता है; इस प्रकार उस राग को जानना असद्भूत व्यवहार है और त्रिकाली रागरहित स्वभाव को जानना निश्चय है। निश्चय को जाने बिना व्यवहार का ज्ञान भी सच्चा नहीं होता। त्रिकाली स्वभाव, रागरहित है। जो उसे नहीं जानता और क्षणिक राग को ही अपना स्वरूप मान लेता है, उसे तो व्यवहार का भी सच्चा ज्ञान नहीं है।

आत्मा में से भाषा उत्पन्न नहीं होती तथा आत्मा कारणरूप होकर भी भाषा को उत्पन्न नहीं करता। आत्मा की इच्छा के कारण भाषा नहीं होती, परन्तु जड़ पुद्गल (भाषावर्गणा) स्वयं भाषारूप परिणमते हैं। केवली भगवान के इच्छा नहीं होने पर भी वाणी होती है और बहुत से जीवों के इच्छा होने पर भी इच्छानुसार वाणी नहीं निकलती, क्योंकि आत्मा के कारण वाणी नहीं होती; बल्कि जड़ के कारण होती है। इस प्रकार मैं जड़ से भिन्न हूँ — ऐसा भेदज्ञान करना, वह धर्म है।

धर्मी जीव, भेदज्ञान के द्वारा ऐसा जानता है कि मैं देह—मन —वाणी नहीं हूँ, उनका कारण मैं नहीं हूँ, उनका कर्ता नहीं हूँ, कराने वाला नहीं हूँ और उनकी क्रिया स्वयं होती हो, उसका मैं अनुमोदक भी नहीं हूँ।

शास्त्र के ऐसे स्पष्ट कथन आते हैं, वहाँ अज्ञानी जीव कहता है कि 'यह तो निश्चय की बात है, निश्चय से आत्मा, शरीरादिक का नहीं कर सकता परन्तु व्यवहार से तो कर सकता है।' निश्चय क्या है और व्यवहार क्या है? — इसका अज्ञानी को पता नहीं है; इस कारण वह ऐसा मानता है कि आत्मा व्यवहार से बोलता है और शरीर को चलाता है। 'निश्चय से नहीं करता और व्यवहार से करता है' — ऐसा अज्ञानी मानता है; अत: उसके अभिप्राय में कभी भी दोनों नयों के विरोध का परिहार नहीं होता और उसे दोनों नयों के परिहारपूर्वक स्वभाव में स्थिरता का अवसर नहीं आता, अर्थात् उसके अधर्म का अभाव होकर धर्म प्रगट नहीं होता।

निश्चय और व्यवहार के परस्पर विरोध है। वह विरोध कैसे मिटे? निश्चय जो कहता है, वह वस्तुस्वरूप है और व्यवहार कथन के अनुसार वस्तुस्वरूप नहीं है, किन्तु वह उपचार कथन है — ऐसा समझने से दोनों नयों के विरोध का परिहार होता है; परन्तु नयों के कथन की अपेक्षा समझे बिना दोनों को सत्य मान लें कि यह भी सत्य है और यह भी सत्य है, तो उसके दोनों नयों का विरोध कभी नहीं मिटता, अर्थात् उसके मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता।

निश्चय कहता है कि आत्मा, शरीरादिक का कुछ करता ही नहीं है — यह तो यथार्थ वस्तुस्वरूप ही है; और व्यवहार कहता है कि आत्मा, शरीरादि की क्रिया करता है — यह यथार्थ वस्तुस्वरूप नहीं, किन्तु उपचार कथन है। इसका अर्थ यह है कि वस्तुतः आत्मा, शरीरादिक का कुछ नहीं करता।

देखो! यह तत्व समझे बिना बाहर की धूमधाम से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता है। लोगों को बाह्य प्रदर्शन दिखता है, परन्तु अन्तर में चैतन्य हीरा अनन्त गुणों का भण्डार केवलज्ञान का कन्द आत्मा है, उसे वे नहीं देखते। भगवान! तेरी महिमा अपार है। तू अपनी महिमा को भूलकर अनादि से बाहर के पदार्थों की महिमा करके परिभ्रमण कर रहा है। अब तू अपनी आत्मा की महिमा को पहिचानकर, उसकी श्रद्धा कर तो इस जन्म—मरणरूप परिभ्रमण का अभाव होगा। अरे! भगवान की वाणी से भी तेरी महिमा का पार नहीं पड़ता। श्रीमद् राजचन्दजी कहते हैं कि —

जो पद श्री सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे ?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब ॥ अपूर्व ॥

क्रमशः

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार प्रवचन

यह पुद्गल के परिणमन की बात है। बापू! इसीप्रकार तेरी पर्याय भी तेरे स्वभाव से परिणमती है। कोई अन्य द्रव्य उसको नहीं परिणमा सकता– ऐसा वस्तु का स्वभाव है। इससे विपरीत माननेवाले को मिथ्यात्वशल्य लगती है। वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा समझना चाहिए। इसप्रकार पुद्गल की बात करके अब जीव की बात कहेंगे।

जीव चेतना संजुगत, सदा पूरण सब ठौर।
तातैं चेतन भावकौ, करता जीव न और ॥21॥

अर्थ:– जीव चेतना संयुक्त है, सब जगह सदा पूर्ण है, इस कारण चेतन भावों का कर्त्ता जीव ही है और कोई नहीं है ॥21॥

काव्य – 21 पर प्रवचन

यहाँ विकार परिणाम को सिद्ध करना है। जीव कर्मचेतनारूप परिणमता है; वह भी अपने से ही परिणमता है। कर्म का उदय आया, इसलिए कर्मचेतनारूप होता है –ऐसा नहीं है। जीव रागरूप, द्वेषरूप, वासनारूप –ऐसे अनेक प्रकार से कर्म चेतनारूप परिणमता है, वह अपने पर्यायस्वभाव के कारण परिणमता है। कर्म का उदय जीव को विकाररूप नहीं परिणमा सकता। विकाररूप परिणमने का जीव का अपना (विभाव) स्वभाव है, वह अन्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं रखता। द्रव्य को परिणमना न हो और दूसरा द्रव्य परिणमा दे –ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

जितना ज्ञानावरणी का उघाड़ होता है, उतना ही (ज्ञान का) क्षयोपशम जीव को होता है और ज्ञानावरणी का जितना उदय होता है, उतना जीव का ज्ञान विघ्न पाता है –ऐसी एकान्त मान्यता का यहाँ निषेध करते हैं। जीव स्वयं चेतना संयुक्त है और वह सदा सब जगह पूर्ण है अर्थात् स्वतंत्र है। जब

जैसे भावरूप से परिणमने की योग्यता होती है, उन-उन भावरूप जीव स्वयं परिणमता है। वर्तमान पर्याय कर्म के कारण अथवा पूर्व पर्याय के कारण नहीं होती है।

संवत् 1995 के साल में राजकोट में प्रश्न हुआ था कि जब कर्म का तीव्र उदय होता है, तब तो जीव को तीव्र विकाररूप परिणमना ही पड़ता है न?(भाई!) यह बात सत्य नहीं है। जीव को कर्म के उदय के अनुसार परिणमना ही पड़ता है -ऐसा नहीं है और जीव के परिणाम के अनुसार कर्म को परिणमना ही पड़ता है -ऐसा भी नहीं है। वे दोनों अपनी-अपनी योग्यता से परिणमते हैं। 'चेतनभाव को करता जीव न और।'

नदी में पानी का जोर हो तो मनुष्य बह जाता है -ऐसा कहा जाता है और ऐसा होता दिखता है। उमराला में एक ब्राह्मण के यहाँ ऐसा प्रसंग बना; परन्तु यहाँ कहते हैं कि उन परमाणुओं की और उस जीव की उस समय वैसी ही परिणमने की योग्यता होती है, इसलिए वे वैसे परिणमते हैं।

लोग तो ऐसा ही कहते हैं कि 'कर्म उदय बलवान है, नहिं पुरुष बलवान' -परन्तु भाई! ऐसा नहीं है। तेरे परिणाम ढीले हों, तभी उदय को बलवान कहा जाता है; परन्तु उदय के कारण तेरे परिणाम ढीले हैं- ऐसा नहीं है।

अहा..! अभी जिसको नवतत्त्वों की अवस्था की स्वतंत्रता का ही पता नहीं है, उसको अकेले ज्ञायक मूर्ति आत्मा के आश्रय से ही धर्म होता है, इसकी गंध भी नहीं आती।

अपनी विकारी पर्याय जितने प्रमाण में करे, उसका कर्त्ता जीव है, कर्म का उदय उसको नहीं परिणमाता है। द्रव्य की परिणमन की शक्ति है इस कारण वह परिणमता है ऐसा वस्तु का स्वतंत्र स्वरूप है- ऐसा जानने पर इसकी पराधीन दृष्टि छूटकर स्वाधीन होता है कि यदि मैं स्वभाव पर दृष्टि करके विकार नहीं करूँ तो नहीं होता है यह मेरे अधिकार की बात है।

अब शिष्य फिर प्रश्न करता है-

शिष्य का पुनः प्रश्न

ग्यानवंतकौ भोग निरजरा-हेतु है।
अज्ञानीकौ भोग बंध फल देतु है॥
यह अचरज की बात हिये नहि आवही।
पूछै कोऊ सिष्य गुरु समझावही॥22॥

अर्थः– कोई शिष्य प्रश्न करता है, कि हे गुरुजी! ज्ञानी के भोग निर्जरा के लिये हैं और अज्ञानी के भोगों का फल बंध है, यह अचरज भरी हुई बात मेरे चित्त पर नहीं जमती? इसको श्रीगुरु समझाते हैं ॥22॥

काव्य – 22 पर प्रवचन

शिष्य गुरु से पूछता है कि आपने कहा कि 'ज्ञानी के पूर्व कर्म का विपाक खिर जाता है और अज्ञानी के तो पूर्वकर्म का उदय आता है और उससमय नया बंध भी होता है।' हमको तो इस बात का अचरज आता है– यह बात जमती नहीं है। ऐसी आशंका शिष्य को होने पर गुरु उसका समाधान करते हैं।

समाधानरूप पद निम्नानुसार है–

ऊपर की हुई शंका का समाधान

दया-दान-पूजादिक विषय-कषायादिक,
दोऊ कर्मबंध पै दुहूकौ एक खेतु है।
ग्यानी मूढ़ करम करत दीसैं एकसे पै,
परिनामभेद न्यारौ न्यारौ फल देतु है॥
ग्यानवंत करनी करै पै उदासीन रूप,
ममता न धरै तातैं निर्जराकौ हेतु है।
वहै करतूति मूढ़ करै पै मगनरूप,
अंध भयौ ममतासौं बंध-फल लेतु है॥23॥

अर्थः– दया, दान, पूजादि पुण्य व विषय-कषाय आदि पाप दोनों कर्मबंध हैं और दोनों का उत्पत्तिस्थान एक ही है। इन दोनों प्रकार के कर्मों के

करने में सम्यग्ज्ञानी और मिथ्यात्वी एक से दिखते हैं, परन्तु उनके भावों में अन्तर होने से फल भी भिन्न-भिन्न होता है। ज्ञानी की क्रिया विरक्तभाव सहित और अंहबुद्धि रहित होती है, इसलिये निर्जरा का कारण है, और वही क्रिया मिथ्यात्वी जीव विवेक रहित तल्लीन होकर अहंबुद्धि सहित करता है, इसलिये बन्ध और उसके फल को प्राप्त होता है ॥23 ॥

काव्य - 23 पर प्रवचन

देखो ! इसमें कुछ समझ में आता है ?

धर्मी उसको कहते हैं कि जिसको शुभाशुभराग आता है; परन्तु उसका स्वामी नहीं होता। अपने स्वभावभाव के रूप में उनको नहीं गिनता। इसका कारण यह है कि ज्ञानी को अपने ज्ञानानन्दस्वरूप का अनुभव हुआ है इसकारण पुण्य-पापभाव आने पर भी ज्ञानी उनसे विरक्त है, ज्ञानी की दृष्टि उनमें नहीं है, ज्ञानी को उनमें अहंबुद्धि नहीं है; वह तो उनसे न्यारा का न्यारा ही रहता है। उसको राग आता है, परन्तु वह जहरतुल्य लगता है। राग में अहंपना नहीं होता।

जिसको शरीर, कर्म और राग से भिन्न तथा ज्ञानानन्द के भण्डार से परिपूर्ण आत्मा का भान होता है, उसको अपने स्वभाव में ही अहंपना होता है, परन्तु विभाव परिणाम में अहंपना अथवा एकत्वपना नहीं रहता। चाहे तो दया, दान, पूजादि के शुभभाव हो अथवा विषय-कषायादि के अशुभभाव हों; दोनों बंध के कारण हैं। मैं तो इन दोनों प्रकार के भावों से रहित हूँ और ज्ञानानन्द से सहित हूँ। इसप्रकार ज्ञानी ने अपना- स्वभाव का अनुभव किया है। ज्ञानानन्दस्वरूप को ज्ञेयरूप से जाना है और श्रद्धा में लिया है कि मैं तो पुण्य-पाप से रहित ज्ञानस्वरूपी वस्तु हूँ। ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव होने के कारण धर्मी पुण्य-पाप में वर्तते दिखने पर भी उनसे विरक्त हैं, उन भावों में धर्मी को अहम्पना नहीं है।

अज्ञानी को भी ऐसे ही पुण्य-पाप भाव होते हैं; परन्तु उसको परिणाम में एकत्वपना है- इसकारण वे परिणाम अज्ञानी को नवीन बंध के कारण होते हैं और ज्ञानी को उन परिणामों में एकत्वपना नहीं है, इसलिए नया बंध नहीं

होता है। ज्ञानी के भोग निर्जरा के कारण हैं ऐसा कहा है इसकारण भोगने का भाव निर्जरा का कारण नहीं है; परन्तु वह भाव फल दिये बिना खिर जाता है।

जहाँ चैतन्य भगवान अनन्त आनन्द और ज्ञानरस से भरपूर हैं, उस परिपूर्ण भण्डार पर धर्मी की दृष्टि है– इसकारण उसको पुण्य–पाप के विकल्प में एकता नहीं होती। अतः अहंपना भी नहीं होता –इसकारण उन परिणामों के निर्मल होने से वे भाव (विकारी भाव) खिर जाते हैं। जो आत्मा के भाव नहीं हैं, वे खिर जाते हैं– ऐसा सिद्ध करना है।

'ग्यानवंत करनी करै पै उदासीनरूप'– ज्ञानवंत ज्ञानी को अपनी कमजोरीवश विषय–कषायादि अशुभभाव और दया, दान, पूजादि के शुभभाव होते हैं; परन्तु उनमें रस नहीं होता है, उदासीनता है। अर्थात् उसको शुभ–अशुभभाव जहरतुल्य लगते हैं –इसकारण वह उनको अपने स्वभाव से एकमेक नहीं करता है। उसकी दृष्टि और ज्ञान तो वहाँ से हट गये हैं; परन्तु भूमिकानुसार जुड़ता है, उसमें उदासीनता वर्तती है।

राग की तीव्रता होवे, अनीति के तीव्र भाव होवें और कोई निर्विकल्प अनुभव करना चाहे तो नहीं हो सकता। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में कहा है कि अभी तो श्रद्धा में पर की ममता के भाव पड़े हैं और निर्विकल्प होना चाहता है तो वह निर्विकल्प कहाँ से होगा ? नहीं होगा। अभी तो पात्रता का भी ठिकाना न हो और ऐसा माने कि 'भोग तो निर्जरा का हेतु हैं'– तो वह स्वच्छन्दी है, मर जायेगा। अर्थात् उसके भोग तीव्र बंध के कारण होंगे, निर्जरा के नहीं।

यहाँ तो जिसको राग और निमित्त से हटकर स्वभाव का अनुभव हुआ है, उसको स्वभाव के अनुभव के परिणाम में राग की एकता नहीं रहती, विरक्ति रहती है, इतना स्वभावसन्मुखता का पुरुषार्थ हुआ है; उसकी बात है। उसको राग आकर छूट जाता है, स्वभाव में एकरूप नहीं होता। ध्रुवस्वभाव की दृष्टि के जोर में राग टिक नहीं सकता। 'समयसार' की 11वीं गाथा में कहा है कि शुद्धनय के अनुसार ज्ञान होने मात्र से 'मैं यह आत्मा हूँ, राग में नहीं हूँ'– ऐसा भेदज्ञान हो जाता है। शुद्धनय का विषय ध्रुव है, इसलिए मैं शुद्धस्वरूप हूँ

ऐसा (अनुभव में) लेते ही रागादिक से भेदज्ञान हो जाता है।

भाई ! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

ज्ञानी के भोग निर्जरा के हेतु हैं, कारण कि ज्ञानी के परिणाम ज्ञानमय हैं। ज्ञान और आनन्द के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उनके साथ विकल्प-रागादि परिणाम भी उत्पन्न होते हैं; परन्तु ज्ञानी को उनमें एकता नहीं है, अहम् नहीं है इसकारण वे छूट जाते हैं।

नोआखली में बना था, उसप्रकार माँ और पुत्र को इकट्ठा करे तो उनको ऐसा लगता है कि जमीन फट जाये तो उसमें समा जायें; परन्तु यह दशा हमको न हो। उसीप्रकार धर्मी को रागादि परिणाम के साथ एकत्व करना चाहे तो कभी नहीं होता। भले ही पूजा के परिणाम हों या भक्ति के हों; परन्तु जिनमें से एकता टूट गई उनमें कभी अहम् -मेरापना नहीं होता। धर्मी का अहम्पना तो ज्ञानानन्द स्वभाव में है।

यह कोरी बात नहीं है। यह तो भाव की बात है। ज्ञानी के तो सम्पूर्ण भाव ही बदल गये हैं। 'अहो ! मैं तो आनन्द का सागर हूँ, मैं विकार सागर नहीं हूँ, न मैं विकार के पीछे हूँ।' ज्ञानी राग की समीपता छोड़कर आनन्द की समीपता में आ गये हैं। ऐसी दशा को धर्म कहा जाता है। बापू ! यह कोई बात करने अथवा बोलने की चीज नहीं है, यह तो अन्दर में उतारने की चीज है।

सामने इन्द्राणी आकर खड़ी होवे और इन्द्र को किंचित् विकल्प उत्पन्न हो कि 'यह ठीक है' वह विकल्प उसको विषतुल्य लगता है और इसी जगह अज्ञानी होवे तो उसके इस विकल्प में मिठास लगती है। इतना ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर है।

'जहाँ मैं हूँ, वहाँ राग नहीं है और जहाँ राग है, वहाँ मैं नहीं हूँ' -ऐसे भेदज्ञान के परिणाम के कारण ज्ञानी को कर्म भिन्नरूप से उदय में आता है और भिन्नरूप से (ही) खिर जाता है। वे कर्म के परमाणु और विकल्प आदि आते हैं, उनमें 'मैंपना' नहीं होता -इस कारण वे खिर जाते हैं। 'यह राग ही मैं हूँ' ऐसा नहीं होने से और 'यह ज्ञान और आनंद ही मैं हूँ' -ऐसा (विवेक) रहने से ज्ञानी को पूर्व कर्म का उदय आकर खिर जाता है। **क्रमशः**

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— भरत चक्रवर्ती मुनिराज की प्रतीक्षा करते हैं कि कब मुनिराज आहार लेने पधारें? मुनिराज पधारने पर हमारे आँगन में मानों कल्पवृक्ष आया! ऐसा समझकर वे भक्तिपूर्वक आहारदान देते हैं। इस प्रकार गुरुदेव एक ओर मुनिराज का दासत्व तथा दूसरी ओर तू भगवान है ऐसा कहते हैं; तो दोनों का मेल किस प्रकार है? कृपया समझाइये।

समाधान :—द्रव्य अपेक्षा 'तू भगवान है' ऐसा गुरुदेव कहते थे। आत्मा का द्रव्यस्वभाव भगवान जैसा है, परन्तु पर्याय में विभाव है, अशुद्धता है। द्रव्य अपेक्षा आत्मा शुद्ध है, जैसे सिद्धभगवान हैं वैसा ही है; परन्तु पर्याय में अपूर्णता है। भरतचक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि थे। स्वयं गृहस्थाश्रम में थे, तब भोजन के समय आहारदान देने की भावना को भाते हैं कि कोई मुनिराज पधारें, उन्हें आहार दूँ। ऐसी भावना श्रावकों को-गृहस्थों को होती है; क्योंकि अभी अपूर्णता है, साधना चल रही है। द्रव्य-अपेक्षा आत्मा सिद्ध भगवान जैसा है, ऐसी श्रद्धा प्रगट हुई है, सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है तथा ज्ञायक की धारा प्रगट हुई है, परन्तु पर्याय में अभी अपूर्णता है; चौथे-पाँचवें गुणस्थान की भूमिका है, इसलिए ऐसे (आहारदानादि के) भाव आते हैं।

मुनिराज तो मोक्षमार्ग में आगे बढ़ गये हैं, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं; स्वरूप में रमण कर रहे हैं; सर्वसंग परित्यागी एक आत्मा में झूलनेवाले हैं। आत्मा में से बाहर आयें तब कभी शास्त्र-स्वाध्याय अथवा द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार आदि शुभभावों में रुकते हैं; तथा क्षण में अन्तर में चले जाते हैं—ऐसे मुनिराज को देखकर साधक को बहुत भावना होती है: आहारदान का समय हो तब कोई मुनिराज पधारें!

छह खंड के अधिपति तथा चौदहरत्न एवं नवनिधि के स्वामी ऐसे

चक्रवर्ती स्वयं आहारदान की भावना भाते हैं कि कोई मुनिराज पधारें! आँगन में मुनिराज के पधारने पर 'मेरे आँगन में आज कल्पवृक्ष फलित हुआ!' ऐसी उन्हें भावना आती है। शुभभाव में देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति होती है और अन्तर में शुद्धात्मा भगवान समान है ऐसी श्रद्धा भी होती है। दोनों एकसाथ हैं।

ज्ञानी को पर्याय में अपूर्णता होने से देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति आये बिना नहीं रहती। धन्य मुनिदशा! जिसने ऐसी मुनिदशा अंगीकार की वह धन्य है—ऐसी भावना भरत चक्रवर्ती को आती है। उनको पर्याय में दासत्व है कि मैं तो मुनिराज का दास हूँ; देव-शास्त्र-गुरु का दास हूँ; जो गुणों में मुझसे बड़े हैं, उन सबका दास हूँ। मैं द्रव्य-अपेक्षा भगवान-प्रभु हूँ, किन्तु पर्याय में पामर हूँ। कहाँ मुनिदशा और कहाँ मेरी दशा! इस प्रकार स्वयं पामरपना मानते हैं। पर्याय में तो मैं मुनि का दास हूँ। पर्याय में दासत्वपना और द्रव्य-अपेक्षा मैं भगवान हूँ—ऐसी दोनों प्रकार की परिणति है। श्रद्धा में मैं द्रव्य से शुद्ध हूँ—ऐसा विश्वास है और पर्याय में अशुद्धता है, उसका ज्ञान है, इसलिए सम्यग्दृष्टि को भावना होती है कि कब मैं मुनिपना अंगीकार करूँ।

मुमुक्षु :— क्या पर्याय का ज्ञान करते हुए ध्येय में शिथिलता नहीं आ जायेगी?

बहिनश्री :— पर्याय का ज्ञान करने में किंचित्मात्र शिथिलता नहीं आती; जैसा द्रव्य है, वैसी श्रद्धा हो वहाँ शिथिलता नहीं आती। श्रद्धा की—ज्ञायक की परिणति (द्रव्य से मैं ज्ञायक हूँ वह) चल रही है और पर्याय में दासत्व होता है—वे दोनों साथ रहते हैं, उनमें किंचित् भी फेर नहीं पड़ता। पर्याय में दासत्व मानता है, उसमें भी फेर नहीं पड़ता, और स्वयं द्रव्य से प्रभुत्व माना है, उसमें भी फेर नहीं पड़ता। दासत्व में तनिक-भी न्यून दासत्व नहीं है, किन्तु परिपूर्ण अपूर्णता है तथा भीतर प्रभुत्व में भी

किंचित् न्यूनता नहीं आती; दोनों एकसाथ रहते हैं। वह परिपूर्ण भक्ति करता है। मैं तो भगवान जैसा हूँ, इसलिए भक्ति किसलिए करूँ ? ऐसा (विचार) कर दासत्व में किंचित् न्यूनता लाता हो, ऐसा भी नहीं है।

मुमुक्षु :— पर्याय को बहुत याद करें तो दृष्टि मन्द हो जाये ऐसा नहीं होता ?

बहिनश्री :— ऐसा किंचित्मात्र नहीं होता। साधक को पर्याय भी ख्याल में है और द्रव्य भी ख्याल में है—उन दोनों को ख्याल में रखकर, जिस समय जिस प्रकार का राग आये उसमें पृथक् रहता है। पर्याय में जो प्रशस्त राग आता है, उसमें भक्ति आती है परन्तु स्वयं भिन्न रहता है। दृष्टि का जोर बराबर बना रहता है।

मुमुक्षु :— क्या राग से भिन्न रहकर उसका बराबर ज्ञान करता है ?

बहिनश्री :— राग से भिन्न रहकर उसका ज्ञान करता है और भक्ति भी आती है—दोनों साथ होते हैं। अकेला ज्ञान करता है ऐसा नहीं, भक्ति भी आती है। चक्रवर्ती राजा स्वयं भावना भाता है और स्वयं आहारदान देता है, नौकर-चाकरों को आदेश नहीं देता। अपने को स्वयं ऐसी भावना आती है और वर्तन भी वैसा होता है। निश्चय-व्यवहार की सन्धि है। वे दोनों एकसाथ कैसे रहते होंगे!—ऐसा अटपटा लगता है, परन्तु वे दोनों परिणति में साथ रहते हैं। बात अटपटी लगे, किन्तु परिणति में दोनों साथ रहते हैं।

मुमुक्षु :— पर्याय-अपेक्षा शत-प्रतिशत दासत्व स्वीकारता है और फिर द्रव्य-अपेक्षा शत-प्रतिशत ऐसा भी स्वीकारता है कि मैं परमात्मा हूँ ?

बहिनश्री :— शत-प्रतिशत दासत्व और शत-प्रतिशत परमात्मपना—दोनों स्वीकारता है तथा भेदज्ञान की धारा चलती है। द्रव्य पर जोर रहता है और पर्याय में दासत्व वर्तता है। उपयोग में वह कार्य करता है और परिणति जोरदार वर्तती है।

क्रमशः

प्रथमानुयोग

....गतांक से आगे

तीर्थधाम चिदायतन

हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास

धार्मिक नगरी हस्तिनापुर का वर्णन उत्तरपुराण से

तब वे (अरनाथ भगवान) दीक्षावन में कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन रेवती नक्षत्र में सायंकाल के समय आम्रवृक्ष के नीचे तेला का नियम लेकर विराजमान हुए। उसी समय घातियाकर्म नष्ट कर उन्होंने अर्हन्तपद प्राप्त कर लिया। देवों ने मिलकर चतुर्थ ज्ञान कल्याणक में उनकी पूजा की। कुम्भार्य को आदि लेकर उनके तीस गणधर थे, छह सौ दश ग्यारह अंग चौदह पूर्व के जानकार थे, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस सूक्ष्म बुद्धि को धारण करनेवाले शिक्षक थे। अट्ठाईस सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, तैंतालीस सौ विक्रियाऋद्धि को धारण करनेवाले थे, बीस सौ पचपन मनःपर्ययज्ञानी थे। और सोलह सौ श्रेष्ठवादी थे। इस तरह सब मिलाकर पचास हजार मुनिराज उनके साथ थे। यक्षिलाको आदि लेकर साठ हजार आर्यिकाएँ थीं, एक लाख साठ हजार श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएँ थीं, असंख्यात देव थे और संख्यात तिर्यंच थे। इस प्रकार इन बारह सभाओं में घिरे हुए अतिशय बुद्धिमान भगवान अरनाथ ने धर्मोपदेश देने के लिए अनेक देशों में विहार किया। जब उनकी आयु एक माह की बाकी रह गई तब उन्होंने सम्मेदाचल की शिखर पर एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण कर लिया तथा चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन रेवती नक्षत्र में रात्रि के पूर्वभाग में मोक्ष प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्रों ने आकर निर्वाण कल्याणक की पूजा की। भक्तिपूर्वक सैकड़ों स्तुतियों के द्वारा उनकी स्तुति की, और तदनन्तर वे सब अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

जिन्होंने परम लक्ष्मी और धर्मचक्र को प्राप्त करने की इच्छा से पृथिवीमण्डल को संचित करने वाला अपना सुदर्शन चक्र कुम्भकार के चक्र के समान छोड़ दिया और राज्य-लक्ष्मी को घटदासी (पनहारिन) के समान त्याग दिया। तथा जो पापरूपी शत्रु का विध्वंस करनेवाले हैं, ऐसे

अरनाथ जिनेन्द्र भक्ति के भार से नम्रीभूत एवं संसार से भयभीत तुम सब भव्य लोगों की सदा रक्षा करें। क्षुधा, तृषा, भय आदि बड़े-बड़े कर्मों के द्वारा किये हुए क्षुधा तृषा आदि अठारहों दोषों को उनके निमित्त कारणों के साथ नष्टकर जिन्होंने विशुद्धता प्राप्त की थी, जो तीनों लोकों के एक गुरु थे तथा अतिशय श्रेष्ठ थे ऐसे अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ तुम लोगों को शीघ्र ही मोक्ष प्रदान करें। जो पहले धनपति नाम के बड़े राजा हुए, फिर व्रतों के स्वामी मुनिराज हुए, तदनन्तर स्वर्ग के अग्रभाग में सुशोभित जयन्त नामक विमान के स्वामी सुखी अहमिन्द्र हुए, फिर छहों खण्ड के स्वामी होकर चौदह रत्नों और नौ निधियों के अधिपति—चक्रवर्ती हुए तथा अन्त में तीनों लोकों के स्वामी अरनाथ तीर्थंकर हुए वे अतिशय श्रेष्ठ अठारहवें तीर्थंकर अपने आश्रित रहनेवाले तुम सबको चिरकाल तक पवित्र करते रहें।

अथानन्तर—इन्हीं अरनाथ भगवान के तीर्थ में सुभौम नाम का चक्रवर्ती हुआ था। वह तीसरे जन्म में इसी भरतक्षेत्र में भूपाल नाम का राजा था। किसी समय राजा भूपाल, युद्ध में विजय की इच्छा रखनेवाले विजिगीषु राजाओं के द्वारा हार गया। मान भंग होने के कारण वह संसार से इतना विरक्त हुआ कि उसने संभूत नामक गुरु के समीप जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। उस दुर्बुद्धि ने तपश्चरण करते समय निदान कर लिया कि मेरे चक्रवर्तीपना प्रकट हो। उसने यह सब निदान भोगों में आसक्ति रखने के कारण किया था। इस निदान से उसने अपने तप को हृदय से ऐसा दूषित बना लिया जैसा कि कोई विष से दूध को दूषित बना लेता है।

वह उसी तरह घोर तपश्चरण करता रहा। आयु के अन्त में चित्त को स्थिरकर संन्यास से मरा जिससे महाशुक्र स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। वहाँ सोलह सागर प्रमाण आयु को धारण करनेवाला वह देव सुख से निवास करने लगा। इधर इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अनेक गुणों से सहित एक कोशल नाम का देश है। उसके अयोध्या नगर में इक्ष्वाकुवंशी राजा सहस्रबाहु राज्य करता था। हृदय को प्रिय लगनेवाली उसकी चित्रमती नाम की रानी थी। वह चित्रमती कन्याकुब्ज देश के राजा पारत की पुत्री थी। उत्तम पुण्य के

उदय से उसके कृतवीराधिप नाम का पुत्र हुआ। जो दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। इसी से सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा और कही जाती है जो इस प्रकार है—राजा सहस्रबाहु के काका शतबिन्दु से उनकी श्रीमती नाम की स्त्री के जमदग्नि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था। श्रीमती, राजा पारत की बहिन थी। कुमार अवस्था में ही जमदग्नि की माँ मर गई थी इसलिए विरक्त होकर वह तापस हो गया और पंचाग्नि तप तपने लगा।

इसी से सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा और है। एक दृढ़ग्राही नाम का राजा था। उसकी हरिशर्मा नाम के ब्राह्मण के साथ अखण्ड मित्रता थी। इस प्रकार उन दोनों का समय बीतता रहा। किसी एक दिन दृढ़ग्राही राजा ने जैन तप धारण कर लिया और हरिशर्मा ब्राह्मण ने भी तापस के व्रत ले लिये। हरिशर्मा ब्राह्मण आयु के अन्त में मरकर ज्योतिर्लोक में उत्पन्न हुआ—ज्योतिषी देव हुआ और दृढ़ग्राही सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। उसने अवधिज्ञानरूपी नेत्र से जाना कि हमारा मित्र हरिशर्मा ब्राह्मण मिथ्यात्व के कारण ज्योतिष लोक में उत्पन्न हुआ है अत: वह उसे समीचीन जैनधर्म धारण कराने के लिए आया। हरिशर्मा के जीव को देखकर दृढ़ग्राही के जीव ने कहा कि तुम मिथ्यात्व के कारण इस तरह निन्द्यपर्याय में उत्पन्न हुए हो और मैं सम्यक्त्व के कारण उत्कृष्ट देवपर्याय को प्राप्त हुआ हूँ। इसलिए तुम मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन है, उसे धारण करो। जब दृढ़ग्राही का जीव यह कह चुका, तब हरिशर्मा के जीव ने कुछ संशय रखकर उससे पूछा कि तापसियों का तप अशुद्ध क्यों है ? उसने भी कहा कि तुम पृथिवी तल पर चलो मैं सब दिखाता हूँ। इस प्रकार सलाहकर दोनों ने चिड़ा और चिड़िया का रूप बना लिया। पृथिवी पर आकर वे दोनों ही जमदग्नि मुनि की बड़ी-बड़ी दाढ़ी और मूँछ में रहने लगे। वहाँ कुछ समय तक ठहरने के बाद माया को जाननेवाला सम्यग्दृष्टि चिड़ा का जीव, चिड़िया का रूप धारण करनेवाले ज्योतिषी देव से बोला कि हे प्रिये! मैं इस दूसरे वन में जाकर अभी वापिस आता हूँ, मैं जब तक आता हूँ तब तक तुम यहीं ठहकर मेरी प्रतीक्षा करना। इसके उत्तर में चिड़िया ने कहा कि मुझे तेरा विश्वास नहीं है यदि तू जाता ही है तो सौगन्ध दे जा।

क्रमशः

करणानुयोग

भरतक्षेत्र के खण्ड

61. निगोद और क्षुद्र भव में अंतर :

निगोद	क्षुद्र भव
1. ये मात्र साधारण वनस्पति एकेन्द्रिय हैं।	1. इनमें पाँचों इंद्रियवाले हैं।
2. ये पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों प्रकार के हैं।	2. ये मात्र अपर्याप्तक है।
3. उनकी उत्कृष्ट आयु अंतर्मुहूर्त है।	3. इनकी आयु मात्र श्वांस के अठारहवें भाग ही है।
4. इसे नहीं पाने वाले कोई भी जीव नहीं हैं।	4. इसे पाये बिना भी मोक्ष हो जाता है।
5. इनके भव असीमित हैं।	5. इनके भव सीमित हैं।
6. ये मात्र स्थावर हैं।	6. ये स्थावर-त्रस दोनों प्रकार के होते हैं।

62. सम्मूर्च्छन मनुष्य निर्देश :

कर्मभूमि में चक्रवर्ती, बलभद्र वगैरह बड़े राजाओं के सैन्यों में मल-मूत्रों का जहाँ क्षेपण करते हैं, ऐसे स्थानों पर, वीर्य, नाक का मल, कफ, कान और दाँतों का मल और अत्यन्त अपवित्र प्रदेश—इनमें जो तत्काल उत्पन्न होते हैं, उन्हें सम्मूर्च्छन मनुष्य कहते हैं। इनका शरीर अँगुल के असंख्यात भाग मात्र रहता है और ये जन्म लेने के बाद शीघ्र नष्ट होते हैं; लब्ध्यपर्याप्तक होते हैं।

63. अकृत्रिम जिन चैत्यालयों का वर्णन :

ऊर्ध्वलोक में	-	84 लाख, 97 हजार, 023
मध्यलोक में	-	458
अधोलोक में	-	7 करोड़, 72 लाख।

तीनों लोकों में कुल 8 करोड़, 56 लाख, 97 हजार, 481 अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

64. मध्यलोक के 458 अकृत्रिम जिन चैत्यालयों का विवरण :

ढ़ाई द्वीप में पाँच मेरु पर्वत हैं। प्रत्येक मेरु पर सोलह-सोलह चैत्यालय हैं—इस तरह पंच मेरु के 80, एक-एक मेरु के पूर्व-पश्चिम विदेह क्षेत्रों में सोलह-सोलह वक्षार पर्वत हैं और प्रत्येक पर्वत पर एक-एक मन्दिर है : इस तरह वक्षार पर्वत के 80। एक-एक मेरु संबंधी चार-चार गजदंत पर्वत हैं; इन पर भी एक-एक चैत्यालय हैं। इस तरह गजदन्तों के 20। एक-एक मेरु संबंधी छह-छह कुलाचल पर्वतों पर 30, एक-एक मेरु संबंधी देवकुरु और उत्तरकुरु नामक दो-दो भोग भूमियाँ हैं। वहाँ पर 10, इष्वाकार पर्वत पर 4, मानुषोत्तर पर्वत पर 4, नंदीश्वर द्वीप में 52, रुचकवर द्वीप के रुचिक पर्वत पर 4 और कुंडल द्वीप के कुंडलगिरि पर 4, विजयार्ध पर्वतों पर 170, इस प्रकार कुल 458 अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

65. ऊर्ध्वलोक के अकृत्रिम चैत्यालय :

सौधर्म स्वर्ग में	- 32 लाख
ईशान स्वर्ग में	- 28 लाख
सनत्कुमार स्वर्ग में	- 12 लाख
माहेंद्र स्वर्ग में	- 8 लाख
ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में	- 4 लाख
लांतव और कापिष्ट स्वर्ग में	- 50 हजार
शुक्र और महाशुक्र स्वर्ग में	- 40 हजार
सतार और सहस्रार स्वर्ग में	- 6 हजार
प्राणत,आनत, आरण और अच्युत स्वर्ग में	- 700
अधोग्रैवेयिक में	- 111
मध्य ग्रैवेयिक में	- 107
ऊर्ध्व ग्रैवेयिक में	- 91
अनुदिश विमान में	- 9
पंचानुत्तर में	- 5

इस तरह ऊर्ध्व लोक में कुल 84,97,023 अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

क्रमशः

पण्डित सन्तलालजी

सिद्धचक्र विधान के रचियता कविवर पण्डित श्री सन्तलालजी हैं जो सहारनपुर (उ.प्र.) के नकुड़ ग्राम के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम श्री सज्जन कुमार था। ये सहारनपुर के प्रतिष्ठित घराने में श्री शीलचन्दजी के वंशज थे। कविवर का जन्म सन् 1834 में हुआ था। कवि के संस्कार प्रारंभ से ही धार्मिक थे, जो उन्हें माता-पिता से विरासत में मिले थे। परिवार के सब लोग धर्मात्मा थे। आपने रुड़की कॉलेज में अध्ययन किया था।

आपको साहित्य से प्रेम था। सिद्धचक्र की हिन्दी पूजा न होने से आपने इसका विचार किया और प्रस्तुत रचना का सृजन किया। आप विद्वान थे, कवि थे और भक्त थे। जैनधर्म पर किसी प्रकार का आघात आप सहन नहीं करते थे। आर्य समाज के साथ कई बार आपके शास्त्रार्थ हुए, जिसमें आप विजयी रहे।

आप स्वतंत्र व्यवसायी थे, आपने नौकरी नहीं की। आप सुधारवादी विचारों के थे। समाज में व्याप्त कई कुरीतियों के निवारण में आप और आपके परिवार ने काफी योगदान किया है। **जैन विवाह विधि के अनुसार विवाह करने की परिपाटी आपने उस प्रांत में चलाई।** मिथ्यात्ववर्धक कई रूढ़ियों को आपने मिटाया। आप अधिक नहीं जिये, अन्यथा और भी कई साहित्यिक कार्य आपके द्वारा सम्पन्न होते। 52 वर्ष की आयु में जून सन् 1886 में आपका स्वर्गवास हुआ। आपने सिद्धचक्र मण्डल विधान के अतिरिक्त भी अनेक पूजायें एवं भजन लिखे हैं।

सिद्धचक्र विधान के माध्यम से कवि ने सिद्ध भगवन्तों के गुणानुवादों के साथ-साथ उनका स्वरूप एवं सिद्धपद प्राप्ति की प्रक्रिया का भी वर्णन किया है, जो कवि के गहन अध्ययन एवं आध्यात्मिक रुचि का परिचायक है। पूजन के माध्यम से जैनधर्म का सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत करना इस विधान

...... शेष पृष्ठ 28 पर

करणानुयोग

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

चार अनुयोगों की उपासना का फल

जिनागम पूर्वापर विरोध आदि दोषों से रहित होने से अमल है, लोक और अलोकवर्ती पदार्थों का कथन करने वाला होने से विपुल है, सूक्ष्म अर्थ का दर्शक होने से निपुण है, अर्थात् अवगाढ़ ठोस होने से निकाचित है, सबका हितकारी है, परम उत्कृष्ट है और पाप का हर्ता है। ऐसे जिनागम की जो, सदा अच्छी रीति से उपासना करता है, उसे सात गुणों की प्राप्ति होती है। त्रिकालवर्ती अनन्त द्रव्य-पर्यायों के स्वरूप का ज्ञान होता है। हित की प्राप्ति और अहित के परिहार का ज्ञान होता है।

मिथ्यात्व आदि से होने वाले आस्रव का निरोध रूप भाव संवर होता है अर्थात् शुद्ध स्वात्मानुभूतिरूप परिणाम होता है। प्रतिसमय संसार से नये-नये प्रकार की भीरुता होती है। व्यवहार और निश्चयरूप रत्नत्रय में अवस्थिति होती है, उससे चलन नहीं होता। रागादि का निग्रह करने वाले उपायों में भावना होती है। पर को उपदेश देने की योग्यता प्राप्त होती है।

इस प्रकार अनुयोगों का वर्णन पूरा हुआ।

सम्यक्त्व में स्वाध्याय की भूमिका

भगवान महावीर की परम्परा में सम्यग्दर्शन का विशेष महत्त्व है। जिस प्रकार बिना नींव के भवन एवं बिना जड़ के वृक्ष का महत्त्व नहीं है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना किए गये त्याग, व्रत निष्प्रयोजन हैं। सम्यग्दर्शन के अभाव में न तो ज्ञान सम्यक् होता है और न चारित्र ही; इसलिए सम्यग्दर्शन को 'मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी' कहा गया है, सम्यग्दर्शन से ही सम्यक् चारित्र का तेज प्रकट होता है।

सम्यग्दर्शन रहित चारित्र उस अन्धे व्यक्ति की तरह है, जो निरंतर चलना तो जानता है, पर लक्ष्य का पता नहीं। लक्ष्यविहीन यात्रा, यात्रा नहीं

भटकन है; इसलिए एक साधक को प्रति समय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की भावना करनी चाहिए, जिससे वह अपने इष्ट लक्ष्य को पा सके।

अब प्रश्न आता है कि सम्यग्दर्शन क्या है? इसकी जीवन में क्या सार्थकता है? इसे समझना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि इसे समझे बिना हमारे मूल लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है। अध्यात्म की साधना करने वाला अन्य विषय समझे या न समझे, किंतु सम्यग्दर्शन के महत्त्व को समझना उसके लिए अत्यंत आवश्यक है। जिसने सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया, समझो।

अब, सम्यग्दर्शन का वर्णन करते हैं—

सम्यग्दर्शन

आचार्य उमास्वामी ने सम्यग्दर्शन का लक्षण इस सूत्र में लिखा है—

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।

मोक्षशास्त्र, अध्याय-1, सूत्र-2

अर्थात् तत्त्व (वस्तु) के स्वरूपसहित अर्थ-जीवादि पदार्थों की यथार्थ श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है।

जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट सप्त तत्त्वों का जो यथार्थ श्रद्धान है, वह सम्यग्दर्शन है।

पुनः आचार्य कहते हैं—

वह सम्यग्दर्शन उत्पत्ति की अपेक्षा दो प्रकार का है—

तन्निसर्गादधिगमाद्वा। **मोक्षशास्त्र, अध्याय-1, सूत्र-3**

अर्थात् वह सम्यग्दर्शन निसर्ग से और अधिगम से उत्पन्न होता है।

वह सम्यग्दर्शन स्वभाव से अथवा दूसरे के उपदेशादि से उत्पन्न होता है।

उत्पत्ति की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के दो भेद हैं—

1. निसर्गज, 2. अधिगमज।

निसर्गज - जो दूसरे के उपदेशादि के बिना स्वयमेव से उत्पन्न होता है, उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अधिगमज – जो सम्यग्दर्शन पर के उपदेशादि से उत्पन्न होता है, उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जीव को अपनी भूल के कारण अनादिकाल से अपने स्वरूप के संबंध में भ्रम बना हुआ है, इसलिए उस भ्रम को स्वयं के द्वारा दूर करने पर ही सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। जीव जब अपने सच्चे स्वरूप को समझने की जिज्ञासा करता है, तब उसे आत्मज्ञानी पुरुष के उपदेश का योग मिलता है। उस उपदेश को सुनकर जीव अपने स्वरूप का यथार्थ निर्णय करे तो उसे सम्यग्दर्शन होता है।

किसी जीव को आत्मज्ञानी पुरुष का उपदेश सुनने पर तत्काल सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है और किसी को उसी भव में, दीर्घकाल में अथवा दूसरे भव में उत्पन्न होता है। जिसे तत्त्वज्ञान होने के तत्काल बाद सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, उसे 'अधिगमज सम्यग्दर्शन हुआ कहलाता है, और जो परोपदेश बिना उत्पन्न होता है, उसे 'निसर्गज सम्यग्दर्शन' हुआ कहलाता है।

सम्यग्दर्शन होने में अंतरंग निमित्त दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम, क्षयोपशम एवं क्षय है।

इसी बात को बल देते हुए आचार्य कुन्दकुन्ददेव कहते हैं—

सम्मत्तस्स णिमितं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी॥

– नियमसार, गाथा 53

अर्थात् सम्यग्दर्शन होने में निमित्त जिनवाणी तथा जिनवाणी के ज्ञान वाले पुरुष हैं और सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है। जिनसूत्र के जानने वाले पुरुषों को अन्तरंग हेतु कहा गया है, क्योंकि उनके दर्शनमोह के क्षयादि है। सम्यग्दर्शन होने में आभ्यन्तर निमित्त दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम क्षयोपशम तथा क्षय है।

क्रमशः

बालवाटिका

भक्ति से मिलते हैं भगवान !

मैं साक्षात् सीमन्धरस्वामी के दर्शन कर एवं उनका उपदेश सनुकर ही भोजन करूँगा। इस कठिन प्रतिज्ञा को लेकर आचार्य कुन्दकुन्द कई दिन से ध्यानस्थ हैं कई दिन बाद ध्यान में भगवान सीमन्धर स्वामी झलक रहे हैं। अनायास कुन्दकुन्दाचार्य का भगवान के चरणों में मस्तक नत हो गया। वहाँ विदेहक्षेत्र में भगवान की दिव्यध्वनि खिर रही थी। उसी क्षण दिव्यध्वनि में आवाज आई– 'कुन्दकुन्द! धर्म वृद्धि हो'! समवशरण के सभी देव–मानवों में कुतूहल उत्पन्न हुआ, तब पूछा– 'भगवान ! ये कुन्दकुन्द कौन है?'

दिव्यध्वनि खिरी–भरतक्षेत्र के आचार्य कुन्दकुन्द।

एक देव भक्तिवश आचार्य को विदेहक्षेत्र ले गये! वहाँ भगवान का साक्षात् दर्शन और उपदेश सुनकर कुन्दकुन्दाचार्य धन्य हो गये।

शिक्षा– परिणामों के अनुसार पुण्य–पाप का संचय होता रहता है। पुण्ययोग में सहज ही कार्य सम्पन्न होते हैं।

...... पृष्ठ 24 का शेष

की मौलिक विशेषता है। पूजा के अष्टकों में भी कवि ने अष्ट द्रव्य का वर्णन न करके उन्हें चढ़ाने के प्रयोजन का वर्णन भी किया है। इस प्रकार भावों की प्रधानता से लिखा गया यह विधान भावों की शुद्धि का विशेष निमित्तभूत है।

सिद्धचक्र विधान में भावपूर्णता के साथ-साथ कवि की काव्यकला भी अपने प्रौढ़रूप में सामने आयी है। यह ब्रजभाषा में लिखा गया है। कवि की भाषा भावानुगामिनी, सरल और माधुर्य गुणयुक्त है। इसमें 47 प्रकार के छन्दों के प्रयोग से ज्ञात होता है कि कवि छन्दशास्त्र के विशेष ज्ञाता थे। उपमा और रूपक अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग ने काव्यगत सौन्दर्य द्विगुणित कर दिया है। विधान में सर्वत्र भक्तिरस व्याप्त होकर मानो सिद्ध भगवन्तों से साक्षात्कार ही कर रहा है। आपके द्वारा रचित सिद्धचक्र विधान सकल दिगम्बर जैन समाज में प्रचलित है।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– नदी के दो किनारे कभी मिलते नहीं।

उसी प्रकार– दो द्रव्य, दो गुण, पर्यायादि कभी मिलते नहीं, उनका स्वतंत्र अस्तित्व त्रिकाल निराबाध है।

जिस प्रकार– सूर्य का स्वभाव प्रकाश है।

उसी प्रकार– आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द है।

जिस प्रकार– सूर्य में अंधकार नहीं है।

उसी प्रकार– आत्मा में शरीर, मन, विकारादि नहीं है।

जिस प्रकार– अग्नि पर धुआँ होता है, इसलिए अग्नि दिखाई नहीं देती, लेकिन अग्नि है, तब हि धुआँ है।

उसी प्रकार– चारों ओर हर समय पुण्य–पाप की वृत्तियों के कारण आत्म स्वभाव दिखाई नहीं देता, लेकिन आत्मा है वहीं पर ये पुण्य–पाप भाव होते है लेकिन ये आत्म स्वभाव नहीं है।

जिस प्रकार– लेंडी पीपर की घुटाई करने से चरपराहट प्रगट होती है।

उसी प्रकार– ज्ञायक स्वभाव की घुटाई करने से अनन्त गुण प्रगट होते हैं।

जिस प्रकार– किसी के प्रति यह दृढ़ विश्वास हो जाये कि यह मुझे मार डालेगा तो उससे वह अपने को बचाते हुए चौकन्ना रहता है।

उसी प्रकार– ज्ञानी जानते है ये रागादि संसार में रूलाने वाले है। अतः उनसे अपने को बचाकर रखना है।

जिस प्रकार– भूमिकानुसार भाई पितादिक से बातचीत अनुराग होते हुए भी शीलवती का समर्पण पति से दूर होते हुए भी पति के प्रति ही रहता है। उसकी दृष्टि में सदैव पति का स्वरूप बसा रहता है।

उसी प्रकार– ज्ञानी बाह्य प्रवर्तन के समय भी स्वभाव ही श्रद्धेय रहता है।

जिस प्रकार– शीलवती स्त्री पति को ही श्रद्धेय रखती है। उसके वस्त्र एवं अन्य भोगों के साधनों को देखती तो है लेकिन श्रद्धेय नहीं करती है।

उसी प्रकार– ज्ञानी आत्मा को ही श्रद्धेय करता है, वह किसी भी अवस्था में हो, अन्य साधानों को मात्र जानता है।

जिस प्रकार– तेज से स्वतः घूमते हुए चक्र या पंखे को पकड़ने के प्रयत्न में अपना ही घात होता है।

उसी प्रकार– प्रति समय बदलने वाली पर्यायों का लक्ष्य आत्मघातक ही होता है।

क्रमशः

संकलन – स्व० प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

श्रुतपंचमी सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मंगलायतन : श्रुतपंचमी के पावन अवसर पर प्रथम श्रुतस्कंध षट्खंडागम विधान आयोजित किया गया। और पण्डित श्री जे. पी. दोशी, मुम्बई द्वारा श्रुतस्कंध का महत्व और परिचय पर मार्मिक उद्बोधन प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर आदरणीया बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन की गौरवमयी उपस्थिति में 'षट्खंडागम धवला टीका गोष्ठी' का आयोजन दो सत्रों में किया गया। जिसके प्रथम सत्र की अध्यक्षता श्री अजित जैन बड़ोदरा तथा द्वितीय सत्र की अध्यक्षता श्री महीपालजी ज्ञायक, बांसवाड़ा द्वारा की गयी। संचालन का कार्यभार डॉ. ममता जैन उदयपुर और श्रीमती मोनिका जैन, इन्दौर द्वारा किया गया। जिसमें प्रतिदिन संचालित वाचना के अनवरत श्रोताओं ने अपने-अपने विषय को बहुत स्पष्ट तरीके से प्रस्तुत किया।

सम्पूर्ण गोष्ठी में पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित अभिषेक शास्त्री और मंगलायतन परिवारीजनों की उपस्थिति में ऑनलाईन और ऑफलाईन के द्वारा अनेकों तत्त्वरुचिवन्त जीवों ने लाभ लिया।

स्वर्णजयंती महोत्सव सम्पन्न

सागर : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में स्थापित श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई के ऐतिहासिक स्वर्णिम पचास वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में भारतवर्ष में हर्ष और उल्लासमय वातावरण बना हुआ है। उसी पावन प्रसंग में मध्यप्रदेश की नगरी सागर जिले में पचासवाँ स्वर्ण जयन्ती महोत्सव का त्रिदिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया, साथ ही पण्डित संजीव जैन, उस्मानपुर दिल्ली की भक्तिमय भजन संध्या का आयोजन किया गया।

सागर के परकोटा स्थित महावीर जिनालय में दिनांक 21 से 23 जून 2023 तक श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार विधान और पण्डित सुनील शास्त्री राजकोट का नियमसार ग्रन्थ पर स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ। 23 जून 2024 को ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री बसंतभाई दोशी, महामन्त्री श्री महीपालजी ज्ञायक, कोषाध्यक्ष श्री हर्षवर्धनजी, औरंगाबाद, ट्रस्टीगण श्री भरतभाई टिम्बडिया, कोलकाता; श्री पद्मजी पहाड़िया, श्री विजय बड़जात्या, इन्दौर; पण्डित रजनीभाई दोशी; श्री सुशील बजाज (मुन्नाभाई), कोलकाता; श्री नरेश जैन, नागपुर; श्री अशोक जैन, भोपाल; श्री धर्मेन्द्र सेठ, खुरई; श्री गुलाब सेठ,

सागर; श्री अशोक जैन, जबलपुर; श्री सुनील सर्राफ, सागर आदि की उपस्थिति में सागर मुमुक्षु मण्डल द्वारा ट्रस्ट के पदाधिकारियों का भावभीना स्वागत किया गया, पाठशाला के नन्हे–मुन्ने बच्चों द्वारा 'मैं हूँ समयसार' नाटक का मंचन और इसी अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के व्यक्तित्व पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें पण्डित अखिलेश शास्त्री, सागर; पण्डित राजेन्द्र जैन, खड़ैरी; डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मंगलायतन ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया और तीर्थधाम चिदायतन में आयोजित आगामी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आमन्त्रण डॉ. मनीष जैन मेरठ की उपस्थिति में मंच से दिया गया। गोष्ठी का संचालन पण्डित प्रियंक शास्त्री के द्वारा किया गया। और सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन पण्डित विराग शास्त्री, जबलपुर द्वारा किया गया। इस अवसर पर मध्यप्रदेश के सभी नगरों एवं ग्रामों के प्रतिनिधि मण्डल उपस्थित था और ट्रस्ट के पदाधिकारियों का परिचय एवं ट्रस्ट की कार्यशैली, ट्रस्ट के कार्यों की रूपरेखा का विस्तार से प्रस्तुतिकरण श्री महीपालजी ज्ञायक द्वारा किया गया।

कण्ठपाठ प्रतियोगिता

तीर्थधाम मंगलायतन : आषाढ़ कृष्ण अष्टमी 29 जून 2024 को भगवान विमलनाथ के मोक्षकल्याणक के अवसर पर आदरणीया बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन की मंगल प्रेरणा से श्री समयसारजी के 19 गाथा, 16कलश पर सन्धि व अर्थसहित शुद्ध उच्चारणमय छन्दों के नाम उल्लेखपूर्वक कंठपाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

जिसमें प्रथम स्थान मंगलार्थी दिव्य जैन, द्वितीय स्थान मंगलार्थी श्रीमती प्रिया जैन, तृतीय स्थान मंगलार्थी आर्जव जैन ने प्राप्त किया। सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन श्रीमती आयुषी जैन दिल्ली द्वारा किया गया। निर्णायक मण्डल में श्रीमती ज्योति सेठी, जयपुर; मंगलार्थी सुलभ, मुम्बई; पण्डित राजेन्द्र शास्त्री, सागर; विशिष्ट अतिथि पण्डित संजय शास्त्री, जयपुर। सम्पूर्ण कार्यक्रम श्री जैन बहादुरजी जैन, कानपुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

डॉ. राजाराम जैन को पद्मश्री सम्मान

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन शोध संस्थान, वाराणसी के वरिष्ठ अध्यक्ष प्रो. डॉ. राजारामजी जैन को भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से अलंकृत किया गया। 9 मई 2024 को भारत की राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने भारत सरकार की संस्तुति पर प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी की मौजूदगी में राष्ट्रपति भवन में सम्मानित किया गया।

जिनदेशना यूथ कन्वेशन शिविर सानन्द सम्पन्न

लोनावाला : श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट मुम्बई एवं जिनदेशना ट्रस्ट द्वारा आयोजित चार दिवसीय शिविर का आयोजन पुणे स्थित लोनावाला सीमन्धर जिनालय में किया गया। इस अवसर पर डॉ. सोनू शास्त्री दिल्ली, डॉ. विवेक जैन छिन्दवाड़ा, पण्डित विवेक जैन मलाड़, मंगलार्थी अनुभव जैन करेली ने वर्तमान समयानुसार समसामायिक विषयों पर नवयुवकों के हितार्थ व संस्कारों के बीजारोपण हेतु पण्डित नगेश जैन पिड़ावा, पण्डित विराग शास्त्री जबलपुर के कुशल निर्देशन में चारों ही युवा विद्वानों के द्वारा तत्त्वज्ञान की महती प्रभावना हुई।

इस अवसर पर पण्डित जिनेन्द्र राठी पुणे को जैनधर्म के प्रभावना हेतु 'जिनधर्म प्रभावक' सम्मान से पुरस्कृत किया गया। इस अवसर पर डॉ. किरण शाह, श्री सुनील गाँधी और पण्डित जे.पी.दोशी, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री मंगलायतन, आदि की मंगलमय उपस्थिति थी।

इसी अवसर पर आगामी तीर्थधाम चिदायतन में आयोजित श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव का मंगलमय आमन्त्रण दिया गया।

आगामी यूथ शिविर, भोपाल ज्ञानोदय में आयोजित किया जायेगा।

स्वर्ण जयंती वर्ष पर निबन्ध प्रतियोगिता

मुंबई : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई के सफलतम 50 वर्ष होने के मंगल अवसर पर संपूर्ण देश में अनेकों आयोजन किए जा रहे हैं, इसी शृंखला में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित **निबंध लेखन प्रतियोगिता जिसके विषय-1. आत्मानुभूति में स्वाध्याय का महत्त्व, 2. जैन तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार में हमारी भूमिका।**

इसकी जमा कराने की अन्तिम तिथि भगवान महावीरस्वामी निर्वाण महोत्सव 01 नवम्बर 2024।

नियमावली :— यह निबंध प्रतियोगिता दो वर्गों में आयोजित है— **1) 12 से 35 वर्ष तक 2) 36 वर्ष से ऊपर के लिए... शब्द सीमा :- 500 - 700 शब्द**

सम्पर्क सूत्र - पं. रितेश शास्त्री बांसवाड़ा - 9413118517; पं. विराग शास्त्री, जबलपुर - 9300642434; शास्त्री दीपक जैन 'ध्रुव' - 9079891238

रजिस्ट्रेशन हेतु गूगल फार्म लिंक -

https://forms.gle/rQBpHYS8FwDQaT2bA

वैराग्य समाचार

भीण्डर (उदयपुर) : पण्डित जवाहरलालजी भीण्डरवालों का आकस्मिक देहपरिवर्तन हो गया है। आप करणानुयोग के मर्मज्ञ, अत्यन्त प्रामाणिक और गहरी चिन्तन धारा के विद्वान थे।

लखनादौन : श्री संदीप जैन का आकस्मिक देहपरिवर्तन हो गया है। आप कक्षा 9 के मंगलार्थी यथार्थ जैन के पिताश्री थे।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार दिवंगत आत्माओं के सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्र मुक्ति प्राप्ति की भावना भाता है।

'अमितगति श्रावकाचार'

आचार्य अमितगति द्वारा रचित चरणानुयोग पद्धति का ग्रन्थ 'अमितगति श्रावकाचार' का नवीन प्रकाशन किया गया है। जिसका हिन्दी अनुवाद बालब्र. कल्पना बहिन द्वारा किया गया है। सभी साधर्मियों को अध्ययन की प्रेरणा जागृत हो, इस उपलक्ष्य में सभी स्वाध्याय भवनों, मुमुक्षु संस्थाओं एवं प्रवचनकार विद्वानों को नि:शुल्क सप्रेम भेंट स्वरूप प्रदान किया जा रहा है। डाक खर्च आपका स्वयं का होगा।

सम्पर्क : पण्डित सुधीर शास्त्री 9756633800; अभिषेक जैन 9997996346

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित

पन्द्रह (अ) पुस्तक की वाचना 01 जुलाई 2024 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम – आदरणीय बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर

दोपहर	01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)	**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	भगवती आराधना ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

● Password - tm@4321   youtube channel - teerthdhammangalayatan

के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

तीर्थधाम चिदायतन आवास रजिस्ट्रेशन

आपको यह जानकर हर्ष होगा कि ऐतिहासिक अतिशयकारी पौराणिक तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर की पुण्यधरा पर श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हस्तिनापुर द्वारा **तीर्थधाम चिदायतन में रविवार, 1 दिसम्बर से शुक्रवार 6 दिसम्बर 2024** तक आयोजित होने वाले **श्री 1008 शान्तिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महा-महोत्सव** में पधारने वाले साधर्मियों की आवास व्यवस्था हेतु **आवास रजिस्ट्रेशन पोर्टल** का शुभारम्भ किया जा रहा है।

इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महा-महोत्सव में पधारने वाले सभी साधर्मियों (जिन्हें आवास की आवश्यकता है अथवा जिन्हें आवास की आवश्यकता नहीं है) से विनम्र अनुरोध है कि आप इस आवास रजिस्ट्रेशन पोर्टल को अवश्य भरें, जिससे आपके रहने व भोजन की उचित व्यवस्था की जा सके।

हमें आशा है कि आप इस व्यवस्था में पूर्ण सहयोग करेंगे एवं इस पोर्टल पर अपने साथ-साथ अन्य साधर्मीजनों को भी पंजीकृत कर धर्मलाभ हेतु अपनी सहभागिता सुनिश्चित करेंगे।

Awas Registration Link - Awas.chidayatan.com

सम्पर्क सूत्र - **श्री अजय जैन** - 8006409338

अगस्त 2024 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

3 अगस्त - श्रावण कृष्ण 14 **चतुर्दशी**

6 अगस्त - श्रावण शुक्ल 2
श्री सुमतिनाथ गर्भ कल्याणक

10 अगस्त - श्रावण शुक्ल 6
श्री नेमिनाथ जन्म-तप कल्याणक

11 अगस्त - श्रावण शुक्ल 7 मोक्ष सप्तमी
श्री पार्श्वनाथ मोक्ष कल्याणक

12 अगस्त - श्रावण शुक्ल 8 **अष्टमी**

14 अगस्त - श्रावण शुक्ल 9
आचार्य कुंदकुंद पदारोहण दिवस

18 अगस्त - श्रावण शुक्ल 14
चतुर्दशी

19 अगस्त - श्रावण शुक्ल 15
वात्सल्य पर्व - रक्षाबंधन
श्री श्रेयांसनाथ मोक्ष कल्याणक

25 अगस्त - भाद्रपद कृष्ण 7
श्री शांतिनाथ गर्भ कल्याणक

26 अगस्त - भाद्रपद कृष्ण 8 **अष्टमी**

शास्त्र के अभ्यास का फल

शास्त्र पढ़ भी जड़ रहे यदि निर्विकल्प नहीं बने।
तो वह न माने विर्निमल परमातमा तन में रहे॥

अर्थात् शास्त्र पढ़ते हुए भी जो विकल्प नष्ट नहीं कर पाता, वह जड़ मूर्ख है। वह शरीर में रहते हुए भी निर्मल परमात्मा को नहीं मानता है।

शास्त्र के अभ्यास का तो फल यह है कि रागादि विकल्पों को दूर करना, और निज शुद्धात्मा का ध्यान करना। इसलिए इस व्याख्यान को जानकर तीन गुप्ति में अचल हो परमसमाधि में आरूढ़ होकर निजस्वरूप का ध्यान करना। लेकिन जब तक तीन गुप्तियाँ न हों, परमसमाधि न आये, तब तक विषय-कषायों को हटाने के लिये, शुद्धात्मभावना के स्मरण को दृढ़ करने के लिए परजीवों को धर्मोपदेश देना, परन्तु उसमें भी पर को उपदेश के बहाने मुख्यता से अपने जीव ही को संबोधित करना है। वह इस प्रकार है कि पर को उपदेश देते हुए अपने को समझावे। जो मार्ग दूसरों से छुड़ावे, वह आप कैसे करे ? इससे मुख्य संबोधन अपना ही है। परजीवों को ऐसा ही उपदेश है कि यह बात मेरे मन में अच्छी नहीं लगती, अतः तुम्हें भी भली नहीं लगती होगी, तुम भी अपने मन में विचार करो।

परमात्मप्रकाश, अध्याय-2, गाथा 83

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं

जिस प्रकार व्यापारी लोग, दीपावली आदि के अच्छे मौसम में व्यापार की धूम मचाकर थोड़े ही समय में बहुत कमाई कर लेते हैं; उसी प्रकार धर्मात्मा जीव, धर्मसाधना के मौसमरूप चारित्रदशा में धर्म की धूम मचाकर महान मोक्ष का वैभव प्राप्त कर लेते हैं। **धर्मसाधना का मौसम ही साधुपद कहलाता है।** उसी के लिए बारह भावनाएँ हैं। धर्मीजीव भावना भाता है कि अहा! चारित्रदशा किसे अच्छी न लगेगी? **हम तो ऐसी चारित्रदशावन्त मुनियों के दास हैं। उन्हें हम 'णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं' कहकर अत्यन्त बहुमान से नमस्कार करते हैं।**

(- वीतराग-विज्ञान, भाग 5, पृष्ठ 112)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. जयन्तीलाल जैन,मङ्गलायतन वि०वि०

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com